सबद
पीयर-रिव्यूड त्रैमासिक शोध पत्रिका
वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

पंत की कविता में ग्राम-जीवन : सौंदर्य, यथार्थ और सामाजिक चेतना

रेनू गुप्ता
स्वतंत्र शोधार्थी

सारांश

सुमित्रानंदन पंत की काव्ययात्रा में ग्राम-जीवन का प्रवेश केवल विषय-परिवर्तन नहीं, बल्कि उनकी काव्य-दृष्टि में आए महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का सूचक है। आरंभिक प्रकृति-केंद्रित सौंदर्यबोध से आगे बढ़ते हुए पंत जब ग्रामीण भारत की ओर देखते हैं, तब उनके सामने खेतों की हरियाली के साथ भूख, अभाव, अशिक्षा, शोषण, जर्जर जीवन और सामाजिक विषमता भी उपस्थित होती है। प्रस्तुत आलेख का केंद्रीय प्रश्न यह है कि पंत की ग्राम-कविता किस सीमा तक ग्रामीण जीवन की वास्तविक संरचना और अंतर्विरोधों को अभिव्यक्त कर पाती है तथा कहाँ कवि की पूर्ववर्ती सौंदर्य-दृष्टि और बाहरी पर्यवेक्षक की स्थिति उसकी सीमा बन जाती है। ग्राम्या की 'ग्राम कवि', 'ग्राम चित्र', 'ग्राम श्री', 'वे आँखें', 'गाँव के लड़के', 'ग्राम युवती', 'धोबियों का नृत्य' और 'संध्या के बाद' जैसी कविताओं के आधार पर स्पष्ट होता है कि पंत ने ग्राम को न तो केवल प्राकृतिक रमणीयता का पर्याय माना और न ही उसे एकरूप दैन्य-चित्र में सीमित किया। उनके यहाँ ग्राम प्रकृति, श्रम, विषमता, लोक-संस्कृति, करुणा और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा का जटिल क्षेत्र बनकर सामने आता है।

बीज शब्द : सुमित्रानंदन पंत, ग्राम-जीवन, ग्राम्या, सामाजिक यथार्थ, ग्रामीण श्रम, प्रकृति, प्रगतिशील चेतना।

मुख्य आलेख

सुमित्रानंदन पंत को सामान्यतः प्रकृति और सौंदर्य के कवि के रूप में स्मरण किया जाता है, किंतु उनकी काव्ययात्रा को केवल इसी पहचान में सीमित कर देने से उस वैचारिक परिवर्तन की उपेक्षा होती है जिसके कारण उनका कवि ग्रामीण मनुष्य, श्रम, निर्धनता और सामाजिक विषमता की ओर मुड़ा। पंत की ग्राम-कविता का महत्त्व इसी संक्रमण में है। यहाँ वही कवि है जिसने प्रकृति के रंग, गंध और संगीत को अत्यंत सूक्ष्म संवेदना के साथ ग्रहण किया था, पर अब उसे खेत की हरियाली के पीछे भूखे मनुष्य का चेहरा भी दिखाई देता है। इसीलिए पंत के ग्राम-जीवन संबंधी काव्य का मूल प्रश्न यह नहीं है कि उन्होंने गाँव का कितना मनोरम चित्र बनाया, बल्कि यह है कि प्रकृति-सौंदर्य के संस्कार से निर्मित उनकी दृष्टि सामाजिक यथार्थ से टकराकर किस प्रकार बदलती है।

इस दृष्टि से ग्राम्या पंत की काव्यचेतना का महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। उसके गाँव में प्रकृति और मनुष्य एक ही भौगोलिक संसार में रहते हुए भी समान रूप से प्रसन्न नहीं हैं। खेत उपजाऊ हैं, ऋतुएँ रंगपूर्ण हैं, उत्सव और लोकनृत्य मौजूद हैं, किंतु इन्हीं के बीच किसान बेदखल होता है, बच्चे चिकित्सा और पोषण से वंचित हैं, स्त्री का यौवन श्रम और अभाव में शीघ्र क्षीण हो जाता है और छोटा व्यापारी भी ऐसी आर्थिक व्यवस्था में फँसा है जहाँ शोषित स्वयं किसी अन्य को शोषित करने लगता है। यही अंतर्विरोध पंत की ग्राम-दृष्टि को केवल ग्राम-प्रशंसा से अलग करता है।

सौंदर्य से सामाजिक यथार्थ की ओर

पंत के ग्राम-बोध की दिशा 'ग्राम कवि' में लगभग घोषणात्मक रूप से सामने आती है। यहाँ कवि मानो अपने पूर्ववर्ती सौंदर्य-संस्कार की परीक्षा कर रहा है—

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

"यहाँ न पल्लव वन में मर्मर,
यहाँ न मधु विहगों में गुंजन,
जीवन का संगीत बन रहा
यहाँ अतृप्त हृदय का रोदन!"[1]

यहाँ 'संगीत' शब्द का अर्थ बदल गया है। जो संगीत पहले पल्लवों की मर्मर-ध्वनि और पक्षियों के गुंजन में सुना जाता था, वह अब अतृप्त मनुष्य के रोदन में सुनाई देता है। यह परिवर्तन केवल शब्दावली का नहीं है; यह सौंदर्य की कसौटी में परिवर्तन है। भूख, नग्नता और अभाव के बीच सौंदर्य का निष्कलुष आस्वाद कवि को पर्याप्त नहीं लगता। 'ग्राम कवि' इसीलिए पंत के काव्य में उस आत्मसंघर्ष का संकेत देती है जिसमें सौंदर्यबोध सामाजिक उत्तरदायित्व से जुड़ने लगता है।

'ग्राम चित्र' में यह संघर्ष और स्पष्ट है। गाँव का वातावरण शांत अवश्य है, किंतु यह शांति उल्लास की नहीं, जड़ता और उदासी की है—

"यहाँ नहीं है चहल पहल वैभव विस्मित जीवन की,
यहाँ डोलती वायु म्लान सौरभ मर्मर ले वन की।
आता मौन प्रभात अकेला, संध्या भरी उदासी,
यहाँ घूमती दोपहरी में स्वप्नों की छाया सी।"[2]

इन पंक्तियों में प्रकृति अभी भी पंत की परिचित चित्रात्मकता के साथ उपस्थित है, किंतु 'म्लान', 'मौन', 'अकेला' और 'उदासी' जैसे शब्द वातावरण में मानव-दैन्य की छाया भर देते हैं। कविता आगे प्रकृति की प्रफुल्लता और मनुष्य की विषण्णता को आमने-सामने रखती है। इस प्रकार पंत का प्रकृति-चित्रण सामाजिक अर्थ ग्रहण करता है। प्रश्न यह नहीं रह जाता कि गाँव सुंदर है या असुंदर; प्रश्न यह है कि प्रकृति से संपन्न भूभाग में मनुष्य इतना विपन्न क्यों है। इसी द्वंद्व का दूसरा पक्ष 'ग्राम श्री' में दिखाई देता है—

"फैली खेतों में दूर तलक
मखमल की कोमल हरियाली,
लिपटीं जिससे रवि की किरणें
चाँदी की सी उजली जाली!"[3]

यहाँ पंत की मूल प्रकृति-संवेदना अपने पूरे रंग और दृश्यात्मक आकर्षण के साथ उपस्थित है। 'मखमल', 'हरियाली', 'रवि की किरणें' और 'चाँदी की जाली' खेतों को एक विशाल कलात्मक दृश्य में बदल देते हैं। किंतु ग्राम्या की दूसरी कविताओं के साथ पढ़े जाने पर यह सौंदर्य विडंबनापूर्ण अर्थ ग्रहण करता है। धरती की उत्पादन-क्षमता और उत्पादक मनुष्य की दरिद्रता के बीच असमानता अधिक तीखी दिखाई देती है। 'ग्राम श्री' इस प्रकार केवल कृषि-सौंदर्य की कविता नहीं रह जाती; पूरे संग्रह के संदर्भ में वह उस प्रश्न की पृष्ठभूमि तैयार करती है कि अन्न से भरपूर धरती पर अन्न पैदा करने वाला मनुष्य अभावग्रस्त क्यों है।

दैन्य, शोषण और ग्राम-मनुष्य का चेहरा

पंत की ग्राम-कविता की सामाजिक शक्ति वहाँ अधिक प्रभावी होती है जहाँ ग्राम कोई सामान्य दृश्य न रहकर किसी विशिष्ट मनुष्य के चेहरे, शरीर या अनुभव में केंद्रित हो जाता है। 'वे आँखें' इसका उल्लेखनीय उदाहरण है—

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

"अंधकार की गुहा सरीखी
उन आँखों से डरता है मन,
भरा दूर तक उनमें दारुण
दैन्य दुख का नीरव रोदन!"[4]

इन आँखों में गरीबी केवल आर्थिक आँकड़ा नहीं है; वह मनुष्य की अंतःस्थिति बन गई है। कविता का किसान कभी स्वाधीन था, किंतु भूमि से बेदखली ने उसके आत्मसम्मान को भी आघात पहुँचाया है। पंत यहाँ कृषक-जीवन को केवल श्रमशीलता या सरलता की रूढ़ छवि में नहीं देखते। भूमि और किसान का संबंध जीवन, स्मृति, स्वाधीनता और सामाजिक प्रतिष्ठा का संबंध है। जमीन से विस्थापन इसीलिए मात्र संपत्ति का नुकसान नहीं, व्यक्ति की संपूर्ण जीवन-संरचना का विघटन है। 'आँखें' वर्गीय व्यवस्था के निचले तल की खिड़कियाँ बन जाती हैं। ग्रामीण निर्धनता का दूसरा रूप 'गाँव के लड़के' में उपस्थित है—

"मिट्टी से भी मटमैले तन,
अधफटे, कुचैले, जीर्ण वसन,—
ज्यों मिट्टी के हों बने हुए
ये गँवई लड़के—भू के धन!"[5]

यह चित्र बच्चों की गरीबी को उनकी देह और वस्त्रों पर अंकित करता है। आगे कविता कुपोषण, चिकित्सा के अभाव और शारीरिक दुर्बलता की ओर जाती है। इस स्तर पर पंत की दृष्टि उल्लेखनीय सामाजिक संवेदनशीलता दिखाती है, क्योंकि ग्राम-जीवन का प्रश्न उनके लिए केवल किसान और खेती तक सीमित नहीं रहता; स्वास्थ्य और बाल-जीवन भी उसके भीतर आते हैं। आधुनिक संदर्भ में पढ़ने पर यह कविता ग्रामीण विकास की उस बुनियादी शर्त को रेखांकित करती है जिसमें भोजन, चिकित्सा और सम्मानपूर्ण बचपन किसी भी सभ्य सामाजिक व्यवस्था के अनिवार्य तत्व हैं।

फिर भी यहीं पंत की भाषा की एक सीमा भी सामने आती है। कविता के आगे के हिस्सों में ग्रामीण बच्चों की तुलना पशुओं, कीड़ों और निर्जीव प्रकृति से की गई है। कवि का उद्देश्य उनकी अमानवीय दशा पर क्षोभ व्यक्त करना है, किंतु ऐसी उपमाएँ पीड़ित मनुष्य की व्यक्तिगत सत्ता को कभी-कभी उसकी दयनीय देह में सीमित कर देती हैं। आज की आलोचनात्मक दृष्टि से प्रश्न उठता है कि क्या करुणा के लिए ग्रामीण को अत्यधिक विकृत और असहाय रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है। यही प्रश्न पंत की ग्राम-दृष्टि को एक साथ मानवीय और विवादास्पद बनाता है।

'संध्या के बाद' में आर्थिक विषमता का चित्र अधिक संरचनात्मक हो जाता है। कविता गाँव-कस्बे के छोटे व्यापारी की मानसिकता तक पहुँचती है और सामूहिक जीवन की कल्पना करती है—

"मिलकर जन निर्माण करें जग,
मिलकर भोग करें जीवन का,
जन विमुक्त हों जन शोषण से,
हो समाज अधिकारी धन का?"[6]

इन पंक्तियों में ग्राम-समस्या का समाधान दया में नहीं, सामाजिक संबंधों के परिवर्तन में खोजा गया है। महत्त्वपूर्ण यह है कि कविता केवल धनी और निर्धन के सरल द्विभाजन पर नहीं रुकती। छोटा व्यापारी स्वयं आर्थिक अभाव से पीड़ित है; वह समानता का स्वप्न देखता है, किंतु एक निर्धन वृद्धा को आटा देते समय डंडी भी मारता है। इस विडंबना से पंत बताते हैं कि शोषण केवल किसी एक 'बुरे' व्यक्ति की नैतिक कमजोरी नहीं, बल्कि ऐसी व्यवस्था का परिणाम भी

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

है जिसमें अभाव मनुष्य को दूसरे के हिस्से से लाभ उठाने की ओर धकेलता है। कविता की सामाजिक दृष्टि इसी कारण उपदेश से अधिक जटिल बनती है।

श्रम, स्त्री और लोकजीवन की लय

पंत के गाँव में निर्धनता के साथ जीवन की सक्रियता भी है। ग्रामीण स्त्री इस सक्रियता का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र है। 'ग्राम युवती' का आरंभ उसके रूप-सौंदर्य को प्रकृति से जोड़कर करता है—

"उन्मद यौवन से उभर
घटा सी नव असाढ़ की सुन्दर,
अति श्याम वरण,
श्लथ, मंद चरण।"[7]

यहाँ पंत का पुराना सौंदर्यबोध स्पष्टतः सक्रिय है। ग्राम-युवती वर्षा की घटा, ऋतु और प्राकृतिक रंगों के माध्यम से रूपायित होती है। किंतु कविता आगे बढ़कर उसे केवल दृश्य-सौंदर्य की वस्तु नहीं रहने देती। वह पानी भरती है, खेत की मेड़ों पर चलती है, सिर पर फसल ढोती है और धूप-वर्षा सहती है। अंततः उसका यौवन श्रम और दुःख में असमय जर्जर होने लगता है। इस प्रकार सौंदर्य और श्रम एक ही स्त्री-देह में मिलते हैं।

फिर भी स्त्री-चित्रण पंत की ग्राम-दृष्टि का एक महत्त्वपूर्ण अंतर्विरोध है। कई स्थानों पर कवि की निगाह स्त्री के शरीर, चाल और यौवन पर अपेक्षाकृत अधिक ठहरती है। यह दृष्टि उस समय की पुरुष-केंद्रित काव्य-परंपरा से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकी है। दूसरी ओर, श्रमशील स्त्री का चित्र उसे नागर विलासिता की निष्क्रिय सौंदर्य-वस्तु से अलग भी करता है। इसलिए 'ग्राम युवती' को न केवल स्त्री-सौंदर्य की कविता कहा जा सकता है, न केवल श्रम की; वह दोनों प्रवृत्तियों के तनाव को अपने भीतर रखती है। समकालीन स्त्रीवादी दृष्टि से यही तनाव पुनर्पाठ की माँग करता है।

ग्राम-जीवन केवल श्रम और अभाव का नाम नहीं है। लोक-उत्सव सामुदायिक जीवन को ऊर्जा देते हैं। 'धोबियों का नृत्य' में ध्वनि और गति का ऐसा ही संसार मिलता है—

"उड़ रहा ढोल धाधिन, धातिन,
औ' हुड्डुक घुड्डुकता ढिम ढिम ढिन,
मंजीर खनकते खिन खिन खिन,
मद मस्त रजक, होली का दिन।"[8]

यहाँ भाषा वर्णन नहीं करती, स्वयं नृत्य करने लगती है। 'धाधिन', 'ढिम ढिम ढिन' और 'खिन खिन खिन' जैसी ध्वनियाँ लोकवाद्यों की लय को काव्य की लय में रूपांतरित करती हैं। इससे ग्रामीण समाज केवल पीड़ित समुदाय के रूप में उपस्थित नहीं होता; उसके पास अपना उत्सव, संगीत, देह-भाषा और सामूहिक उल्लास भी है। यह पक्ष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यदि ग्राम्या में केवल दैन्य होता तो गाँव निष्क्रिय करुणा का विषय बनकर रह जाता। लोकनृत्य ग्रामीण मनुष्य की सांस्कृतिक सृजनशीलता को सामने लाता है।

यहीं पंत की ग्राम-दृष्टि की व्यापकता दिखाई देती है। खेत और किसान के साथ बच्चे, स्त्री, छोटा व्यापारी, श्रमिक समुदाय और लोक-कलाएँ भी उनकी दृष्टि में आती हैं। ग्राम एक स्थिर भू-दृश्य नहीं, अनेक स्तरों पर काम करने वाला सामाजिक-सांस्कृतिक संसार है। उसके भीतर श्रम और उत्सव साथ हैं; उत्पीड़न और आत्मीयता साथ हैं; जड़ रूढ़ियाँ भी हैं और परिवर्तन की संभावनाएँ भी।

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

ग्राम-दृष्टि की उपलब्धि, सीमा और वर्तमान अर्थ

पंत के ग्राम-काव्य का मूल्यांकन करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि केवल ग्राम-दरिद्रता का चित्रण नहीं, बल्कि कवि की अपनी सौंदर्य-दृष्टि का आत्मसंशोधन है। 'ग्राम कवि' में प्रकृति का संगीत रोदन में बदलता है, 'वे आँखें' में सामाजिक व्यवस्था किसान की निगाह में दर्ज होती है और 'संध्या के बाद' में कवि आर्थिक संबंधों के पुनर्गठन की कल्पना तक पहुँचता है। ग्राम्या का प्रधान विषय जनसाधारण के कष्टमय जीवन के प्रति सहानुभूति और उससे विकसित होने वाले सामाजिक अन्याय के निषेध को माना है। इस अर्थ में ग्राम्या हिंदी कविता में उस परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें अमूर्त सौंदर्य की जगह ठोस मनुष्य और उसकी जीवन-स्थितियाँ अधिक केंद्रीय होने लगीं।

पंत स्वयं भी अपने इस प्रयत्न की सीमा और प्रकृति को लेकर सजग थे। अपने आलोचनात्मक लेखन में उन्होंने 'वे आँखें', 'गाँव के लड़के' जैसी कविताओं को केवल "थोथी सहानुभूति या दया-काव्य" बन जाने से बचाने की बात कही है।[9] यह कथन उनकी रचना-दृष्टि को समझने की कुंजी है। वे ग्रामीण को केवल करुणा का पात्र नहीं बनाना चाहते; सामाजिक परिस्थितियों की आलोचना तक पहुँचना चाहते हैं। इसलिए उनकी श्रेष्ठ ग्राम-कविताओं में करुणा के साथ क्षोभ भी है।

इसके बावजूद पंत की ग्राम-दृष्टि को प्रत्यक्ष ग्रामीण अनुभव का पूर्ण पर्याय नहीं माना जा सकता। ग्राम्या की भूमिका में कवि स्वयं स्वीकार करते हैं कि ये कविताएँ ग्राम-जीवन के भीतर घुल-मिलकर नहीं लिखी गईं और उनमें ग्रामीणों के प्रति मुख्यतः बौद्धिक सहानुभूति मिलेगी।[10] यह आत्मस्वीकृति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पंत प्रेक्षक और ग्रामीण के बीच की दूरी को छिपाते नहीं हैं। संभवतः इसी दूरी के कारण कहीं-कहीं ग्रामीण मनुष्य एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के बजाय दैन्य, अज्ञान अथवा जड़ता का प्रतिनिधि बन जाता है। 'गाँव के लड़के' की कुछ कठोर उपमाएँ और 'ग्राम युवती' की देह-केंद्रित निगाह इसका प्रमाण हैं।

यह सीमा होते हुए भी पंत की ग्राम-कविता ऐतिहासिक और वर्तमान दोनों स्तरों पर सार्थक है। उसने गाँव के रोमानी आदर्शीकरण को चुनौती दी और यह दिखाया कि हरियाली अपने-आप सामाजिक समृद्धि का प्रमाण नहीं होती। भूमि, उत्पादन और प्राकृतिक संसाधन संपन्न होने के बावजूद यदि उत्पादक मनुष्य भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा और सम्मान से वंचित है तो ग्राम-सौंदर्य अधूरा है। आज ग्रामीण भारत की परिस्थितियाँ पंत के समय से बहुत बदल चुकी हैं, फिर भी कृषि, भूमिहीनता, श्रम, पलायन, ग्रामीण स्वास्थ्य, स्त्री-श्रम और आर्थिक विषमता से जुड़े प्रश्न पूरी तरह समाप्त नहीं हुए हैं। इस अर्थ में पंत की कविता किसी पुराने गाँव का स्थिर दस्तावेज न होकर मनुष्य-केंद्रित विकास की कसौटी उपलब्ध कराती है।

निष्कर्ष

पंत की कविता में ग्राम-जीवन उनके काव्य-विकास का ऐसा क्षेत्र है जहाँ प्रकृति-सौंदर्य, सामाजिक यथार्थ और मानवीय भविष्य-दृष्टि परस्पर टकराते और एक-दूसरे को बदलते हैं। ग्राम्या का गाँव केवल खेत, पेड़, नदी और ऋतुओं का रमणीय परिसर नहीं है। वह भूमि से बेदखल किसान, कुपोषित बालक, श्रमरत स्त्री, आर्थिक विवशता में फँसा छोटा व्यापारी और उत्सव में नाचता लोकसमुदाय—इन सबके संयुक्त अनुभव से निर्मित होता है। पंत की उपलब्धि यह है कि उन्होंने अपने सौंदर्यबोध को सामाजिक अनुभव से संशोधित किया। प्रकृति की समृद्धि के बीच मानव-दैन्य की उपस्थिति उनके काव्य में एक नैतिक प्रश्न बन जाती है। वे ग्रामीण पीड़ा को नियति मानकर स्वीकार नहीं करते; उसके पीछे सामाजिक व्यवस्था, विषमता और शोषण की संरचनाओं को पहचानने की ओर बढ़ते हैं। साथ ही लोकनृत्य,

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

कृषि और श्रम के चित्र ग्राम-जीवन को केवल निराशा में सीमित होने से बचाते हैं। उनकी सीमा उनकी दृष्टि की बाहरी स्थिति तथा कहीं-कहीं दया और वस्तुकरण के निकट पहुँचती भाषा में है। विशेषतः स्त्री और निर्धन ग्रामीण देह के कुछ चित्र आज पुनर्विचार की माँग करते हैं। किंतु स्वयं पंत में इस दूरी का बोध था; यही आत्मसजगता उनकी ग्राम-कविता को अधिक विश्वसनीय बनाती है। अंततः पंत के यहाँ ग्राम-जीवन का महत्त्व किसी आदर्श 'भारतीय गाँव' की स्थापना में नहीं, बल्कि इस प्रश्न में निहित है कि प्रकृति और उत्पादन से समृद्ध समाज में मनुष्य स्वयं कितना सम्मानित, स्वतंत्र और सुखी है। यही प्रश्न उनकी ग्राम-कविता को आज भी आलोचनात्मक प्रासंगिकता प्रदान करता है।

संदर्भ सूची

1. सुमित्रानंदन पंत, ग्राम्या, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, सातवाँ संस्करण, 1977, पृ. 13
2. वही, पृ. 16
3. वही, पृ. 35
4. वही, पृ. 23
5. वही, पृ. 27
6. सुमित्रानंदन पंत, 'संध्या के बाद', अंतरा, भाग–1, नई दिल्ली, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, पुनर्मुद्रण 2022, पृ. 126
7. सुमित्रानंदन पंत, ग्राम्या, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, सातवाँ संस्करण, 1977, पृ. 17
8. वही, पृ. 31–32
9. सुमित्रानंदन पंत, शिल्प और दर्शन, प्रथम खंड, इलाहाबाद, नव साहित्य प्रेस, 1961, पृ. 36
10. सुमित्रानंदन पंत, ग्राम्या, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, सातवाँ संस्करण, 1977, भूमिका, पृ. 8